दलितों व शोषितों का पाक्षिक पत्र
विज्ञापन के लिए केन्द्रीय सरकार व राज्यों द्वारा स्वीकृत

हमायती

सम्पादक–डॉ0 सोहनपाल सुमनाक्षर

❑ वर्ष 57 ❑ अंक-15 ❑ दिल्ली ❑ मई 2019 (द्वितीय) ❑ मूल्य : 2 रु.

अम्बेडकर और गाँधी में वैचारिक अन्तर्विरोध

• राम शरण 'युयुत्सु'

डा. भीमराव अम्बेडकर महाराष्ट्र की जिस महार जाति में जन्मे थे, वह भी कट्टर हिन्दू समाज में अस्पृश्य मानी जाती थी। हिन्दू समाज के इसी अभिशप्त वर्ग में जन्म लेने के कारण विदेशों में उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद भी उन्हें इस समाज के तथाकथित ऊंची जाति वालों के सामाजिक बहिष्कार की अपमानजनक अवहेलनाएं सहन करनी पड़ी थीं।

भारत उस समय बर्तानवी साम्राज्य का उपनिवेश था। विदेशी साम्राज्य के इस जूए को उतार फैंकने के लिए देश में एक देशव्यापी स्वतंत्रता–संग्राम जोरों पर था। इस संग्राम में देश के विभिन्न धार्मिक समुदायों तथा विभिन्न संस्कृतियों से जुड़े हुए लाखों लोग शामिल थे और सभी तरह के बलिदान दे रहे थे। इसी का फल था कि विदेशी हाकिम ने सन् 1930 में, सात समुन्द्र पार, अपने देश की राजधानी लंदन में इस देश की सभी प्रमुख जातियों तथा सभी प्रमुख राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों को एक गोल मेज कांफ्रेस में आमंत्रित किया ताकि देश की भावी व्यवस्था के लिए एक सर्वसम्मत संविधान की बुनियादी बातों का निर्माण किया जा सके। यह कांफ्रेंस लन्दन में 12.11.1930 ई. में 19.1.1931 तक चालू रही।

इस गोलमेज कांफ्रेंस में 89 सदस्यों में से 16 बर्तानवी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि, 20 भारतीय सामन्ती ईकाईयों के तथा 53 बर्तानवी भारत के विभिन्न दलों के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। भारत के अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिये डा. भीमराव अम्बेडकर तथा राव बहादुर टी. सिरीनिवासन भी आमंत्रित किए गये थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रम्जे मैक्डोनल्ड सभा के अध्यक्ष थे।

डा. अम्बेडकर ने अपने इस कांफ्रेंस में दिए भाषण में जोर देकर कहा कि हमारे इस दलित समाज (वर्ग) ने बर्तानवी आधिपत्य का इस धारणा से स्वागत किया था कि वह हमें धार्मिक कट्टरपंथी हिन्दुओं के दमन और अत्याचार से निजात दिलाएंगे। हमारे दलित वर्ग ने हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिखों के विरुद्ध अंग्रेजों की लड़ाई लड़ी थी और उनके लिये यह महान भारतीय साम्राज्य उपलब्ध कराया था। लेकिन मैं पूछता हूं कि ब्रिटिश राज्य ने हमारी इस सामाजिक अस्पृश्यता को दूर करने के लिए आज तक क्या किया है? अंग्रेजों के आने से पहले भी हम मंदिरों में नहीं आ जा सकते थे, क्या अब आपके राज्य में वे प्रतिबन्ध दूर हो गए हैं? अंग्रेजों के आने से पहले, पुलिस फोर्स तथा सेना में हम भर्ती नहीं हो सकते थे; क्या अंग्रेजी राज्य ने हमारा वह अधिकार दिया है? हमारी दशा में परिवर्तन क्यों नहीं हुआ? अब हमें विश्वास हो गया है कि हमारी समस्याओं का समाधान करने की योग्यता अंग्रेजी सरकार में नहीं है। ऐसा नहीं है कि आप हमारे उद्धार के लिए कुछ कर नहीं सकते थे, लेकिन आपका चरित्र, आपकी मन्शा और आपके हित आपको हमारे प्रति न्याय करने से रोकते रहे हैं। अंग्रेजी शासन डरता था कि उसने परम्परा से चले आ रहे सामाजिक तथा आर्थिक विधि–विधान को बदलने की कोशिश की तो देश का शोषक स्वार्थ प्रशासन के लिये परेशानियां पैदा कर देगा। देश में इस प्रकार के प्रशासन को भला हम क्यों चाहेंगे? हम तो अब देश में ऐसी राज्य–व्यवस्था की स्थापना चाहते हैं जो देश के सामूहिक हित के लिए समर्पित हो और जो सदियों से जारी इस सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक शोषण, दमन और अन्याय को उखाड़ फैंकने के लिए प्रतिबद्ध हो।

हम इस भ्रामक धारणा का जोरदार खंडन करते हैं कि दलित वर्ग की समस्या एक सामाजिक समस्या है और इसका राजनीतिक अथवा राजनीतिक अधिकारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम इस भ्रांतिजनक धारणा का विरोध करते हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि भारत के दलित वर्ग की यह समस्या तब तक नहीं सुलझेगी, जब तक हमें अपने उचित राजनीतिक अधिकार नहीं मिल जाते।

डा. अम्बेडकर के इस भाषण का ही परिणाम था कि पहली गोलमेज कांफ्रेंस ने अपने इस दो महीने तक चलने वाले अधिवेशन के अन्त में जिन नौ उपसमितियों का गठन किया गया था, उनमें से अधिकतर में डा. अम्बेडकर को सम्मिलित किया गया। इन नौ उपसमितियों में एक उप समिति अल्पनसंख्यकों की स्थिति के बारे में रिपोर्ट तैयार करने के लिए बनाई गई थी।

लन्दन में होने वाली इस पहली

(शेष पृष्ठ 2 पर)

सम्पादकीय

जाति के दंश से कब छुटकारा मिलेगा दलितों को

आज जब धरती से ऊपर उठकर लोग चांद और मंगल ग्रह पर पहुंचकर वहां नगर बसाने की योजना बना रहे हैं वहीं धरती पर आज भी जातिगत भेदभाव दिखाई पड़ता है। भारत में तो वर्णव्यवस्था के नाम पर पिछले 5 हजार सालों से सबसे नीचे के शूद्र वर्ण के लोगों को उनके धन–सम्पदा इकट्ठा करने, शासन–सत्ता में भागीदारी करने और शिक्षा–दीक्षा अर्जित करने के मानवीय अधिकारों से वंचित किया, बल्कि उनके छोटी जाति का होने के कारण उनकी छाया से भी नफरत की जाती रही। उनके समता, स्वतंत्रता, सम्मान का अधिकार छीनकर उनको दास के रूप में उन्हें उच्चवर्णीय स्वामी के साथ बांध दिया और उन्हें दास के रूप में जीने के लिए अपने मालिक की जूठन खाने, उतरन पहनने और घास–फूंस का पुलाव बिछाकर नीचे धरती पर सोने का विधान बनायां इस प्रावधान व नियमों को न मानने पर मनुस्मृति का दंड विधान था अंग विच्छेद करने का, प्रताड़ना का, मृत्युदंड का। मनुष्य को उच्च–नीच वर्णों (श्रेणी) में बांटने का यह सिलसिला आजादी के 72 साल के बाद भी समाज में कायम है और देश में कहीं न कहीं ऐसी घटनाओं की खबरें सामने आती रहती हैं जहां उच्च जाति के लोगों ने दलित जाति के लोगों के साथ नीच जाति का होने के कारण दुर्व्यवहार, प्रताड़ना और अपमान किया हो।

पूना (महाराष्ट्र) में पेशवाओं के राज में अछूतों (दलितों) को दिन के समय घर से बाहर निकलने पर पाबन्दी थी। रात को भी घर से बाहर गले में हांडी लटकाकर कमर पर झाड़ू बांधकर घुमने का प्रावधान था। हांडी मुंह से थूकने के लिए और झाड़ू उनके पैरों के निशान साफ करने के लिए था। इस तरह पेशवाओं (ब्राह्मणों) ने शूद्रों (दलितों) के साथ अमानवीय व्यवहार किया और उनके सम्मान के साथ जीने के अधिकार को छीने रखा।

देश के आजाद होने से पहले भारत हजारों छोटे–छोटे रजवाड़ों में बंटा हुआ था। उनके राजा–महाराजा अपना शासन पुरोहितों (ब्राह्मणों) की सलाह पर चलाते थे। वर्ण–व्यवस्था के शीर्ष स्थान पर बैठा ब्राह्मण कभी नहीं नहीं चाहता था कि सबसे नीचे का शूद्र (दलित–अछूत) वर्ण कभी भी उभरकर आये। इसलिए वे दलित समाज में उभरते हुए हृष्ट–पुष्ट, दबंग मेधावी, अग्रसर व्यक्ति पर उनकी तेज दृष्टि हमेशा रहती थी। वे राजाओं की सलाह देते थे कि वे अपना नया किला, महल, कुंआ–बावड़ी, बांध, तालाब बनाने से पहले उनको नींव में किसी शूद्र (अछूत) की बलि देनी चाहिये, इससे उनकी कीर्ति भी बढ़ेगी और उनके किले की अवधि भी हजारों साल तक बढ़ जायेगी। वे बलि देने के लिए उन दलित युवाओं का नाम भी निर्देशित करते थे। फिर उन दलित युवाओं को जबरदस्ती लाकर उनकी जिन्दा बलि दे दी जाती थी। बेचारे गरीब, अछूत, दलित कर भी क्या सकते थे राजा के आदेश के सामने। आज तक देश में जितने किले, महल, बावड़ी, कुंआ, तालाब, बांध राजाओं द्वारा बनाये नजर आ रहे हैं, उनकी नींव में दलितों की जबरन बलि दी गई। जोधपुर का अकेला ऐसा किला है जहां बाकायदा किले के अन्दर एक पत्थर की शिला पर साफ लिखा हुआ है कि किले की मजबूती और अक्षुणता के लिए इसकी नींव में राजा राम मेघवाल (अछूत) की जिन्दा बलि दी गई। इसमें तिथि और समय भी

(शेष पृष्ठ 4 पर)

भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

विश्व धरातल पर दलित साहित्य	डॉ. सुमनाक्षर	50/–
अंधा समाज और बहरे लोग	डॉ. सुमनाक्षर	60/–
सिन्धु घाटी बोल उठी	डॉ. सुमनाक्षर	50/–
अब नहीं रहेंगे हाशिये पर	डॉ. सुमनाक्षर	80/–
अम्बेडकर शतक	डॉ. सुमनाक्षर	50/–
विश्व विभूति डा. अम्बेडकर	डॉ. सुमनाक्षर	50/–
दलित लेखक परिचय ग्रंथ (अंग्रेजी)	डॉ. सुमनाक्षर	250/–
बुद्धा दू अम्बेडकर (अंग्रेजी)	डॉ. सुमनाक्षर	150/–
दलित साहित्य	डॉ. सुमनाक्षर	100/–
अम्बेडकर दर्शन	डॉ. सुमनाक्षर	40/–
हमारे संत और समाज सुधारक	डॉ. सुमनाक्षर	60/–
धर्म और समाज	डॉ. सुमनाक्षर	40/–
आदिम जाति चमार (इतिहास, धर्म, संस्कृति)	डॉ. सुमनाक्षर	300/–
दलित उद्घोष	डा. सुमनाक्षर	80/–
दलित साहित्य की हुंकार–सात समन्दर पार	डॉ. सुमनाक्षर	100/–
युगपुरुष बाबू जगजीवनराम	डॉ. सुमनाक्षर	200/–
प्राचीन आदिम जाति वाल्मीकि (इतिहास, धर्म, संस्कृति)	डॉ. सुमनाक्षर	100/–
सभ्यता, संस्कृति, समाज और साहित्य	आचार्य गुरुप्रसाद	100/–
डा. अम्बेडकर भजनावली	राजमल 'राज'	25/–
हमारे दलित गौरव	राजमल 'राज'	25/–
भारत रत्न डा. बी.आर. अम्बेडकर	राजमल 'राज'	25/–
मूल भारती से दलित	राजमल 'राज'	50/–
अम्बेडकरवाद बनाम सामाजिक परिवर्तन	राजमल 'राज'	80/–
दलित साहित्य–दशा और दिशा	डा. माता प्रसाद	200/–
दलित साहित्य से सामाजिक परिवर्तन	डा. माता प्रसाद	100/–
भारत की गुलामी के 22 सौ साल	प्रदीप कुमार मौर्य	250/–
सृजन के कण	जीपी पचौरिया 'दीप'	150/–
बौद्ध धर्म–गया से अयोध्या तक	प्रदीप कुमार मौर्य	120/–
गांधी, अम्बेडकर और दलित	प्रदीप कुमार मौर्य	100/–
सत्सम दर्शन	राजमल 'राज'	100/–
जागा मेहनतकश इंसान	राजमल 'राज'	50/–
हम एक हैं	डा. माता प्रसाद	60/–
रैदास से संत शिरोमणि गुरु रविदास	डा. माता प्रसाद	50/–
ताकि सनद रहे	डा. सुमनाक्षर	100/–

पुस्तक मंगाने के लिए मनीआर्डर से राशि अग्रिम भेजें, व्यवस्थापक,

दलित साहित्य सेन्टर

(भारतीय दलित साहित्य अकादमी)

बी–3/9, दूसरी मंजिल, माडल टाउन–1, दिल्ली–9

फोन : 27421449, 27421460, मो. 9810278936

पृष्ठ 1 का शेष....अम्बेडकर और गाँधी में वैचारिक अन्तर्विरोध

गोलमेज कांफ्रेंस में भारत के सबसे बड़े राजनीकि दल 'कांग्रेस' का कोई प्रतिनिधि शामिल नहीं था। कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता उस समय जेलों में बन्द थे। महात्मा गांधी ने इन्हीं कुछ बुनियादी बातों को लेकर इस कांफ्रेंस का बहिष्कार किया था। दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस 7 सितम्बर, 1931 से शुरू होने वाली थी। इसमें कांग्रेस के प्रतिनिधियों सहित 120 सदस्य आमंत्रित किये थे। दलितों के प्रतिनिधि के रूप में डा. अम्बेडकर को ही पुनः निमंत्रण मिला था।

दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस के लिए जाने से पहले अर्थात् 1 अगस्त, 1931 को महात्मा गान्धी के आमन्त्रण पर डा. अम्बेडकर बम्बई में ही उनसे मिलने गए। यह इन दोनों नेताओं की पहली भेंट थी। गांधी जी ने कहा–''सुना है आपको मुझसे और कांग्रेस से शिकायतें हैं, जब आप पैदा भी नहीं हुए थे, तब से मैं अछूतों की समस्या को सुलझाने का यत्न कर रहा हूं। कांग्रेस इस समय तक अछूतोद्धार के लिए 24-25 लाख रुपये खर्च कर चुकी है। आश्चर्य है कि फिर भी आप मेरा और कांगेस का विरोध कर रहे हैं।''

उत्तर में डा. अम्बेडकर ने कहा–''कांग्रेस ने अछूतोद्धार के लिए अन्तर ही नहीं, विरोध भी था। यह बात अल्प संख्यक समिति की प्रारम्भिक बैठक में ही उभर कर सामने आ गई थी।

महात्मा गांधी ने कहा–''इस समिति में मैंने विशेष हितों की सूची को देखा है। अछूतों के लिए पृथक मताधिकार की बात को मैं देश के लिए घातक मानता हूं। इस विषय में मैं डा. अम्बेडकर से सहमत नहीं हूं।''

महात्मा गांधी के इस कथन का डा. अम्बेडकर ने विरोध करते हुए कहा कि महात्मा गांधी और कांग्रेस दूसरे अल्पमत वर्गों के लिए जो भी विशेषाधिकार देने को राजी हों, वह दलितों के हिस्से में से नहीं दिए जाने चाहिए। इस उप–समिति की अध्यक्षता भी ब्रिटिश प्रधान मंत्री रम्जे मैक्डोनल्ड ही कर रहे थे। उन्होंने भी डा. अम्बेडकर के पक्ष को न्यायोचित मान कर उसकी सराहना की।

डा. अम्बेडकर ने अल्पमत–समिति में दलितों के अधिकारों के लिए संविधान में प्रावधान रखने के लिए तीन मांगें, एक पूरक स्मरण–पत्र के द्वारा रखी। पहली यह कि अछूतों को केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान सभाओं में उनकी जनसंख्या के अनुसार विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाए। उसके लिए, भी इस पृथक निर्वाचन प्रणाली का विरोध किया। उन्होंने दलितों के लिए 'सीटें' सुरक्षित रखकर, उनके लिए संयुक्त चुनाव कराने का समर्थन किया। उधर देश में जगह–जगह दलित वर्ग की संस्थाओं ने डा. अम्बेडकर को दलितों का मुक्तिदाता कहकर उनका जय जयकार किया। अल्पमत–समिति द्वारा तैयार की गई, पृथक निर्वाचन सम्बन्धी इस रिपोर्ट के विरुद्ध महात्मा गाँधी तथा कांग्रेस के विरोध और असंतोष को देखकर, डा. अम्बेडकर पुनः लन्दन जा पहुंचे।

26 मई, 1932 को डा. अम्बेडकर लन्दन के लिए रवाना हो गए ताकि साम्प्रदायिक निर्णय से पूर्व वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री तथा मंत्री मण्डल के अन्य सदस्यों से मिल सकें। इस मुलाकात को सबसे छिपाकर रखा गया ताकि विरोधी लोग कोई बखेड़ा न खड़ा कर दें।

17 अगस्त को डा. अम्बेडकर भारत लौट आए और 20 अगस्त को ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने 'कम्यूनल अवार्ड' की घोषणा कर दी। इस एवार्ड में दलितों को भी पृथक निर्वाचन के अधिकार की घोषणा कर दी गई। विधान सभाओं में उनके लिए सुरक्षित सीटें रखने का प्रावधान रखा गया।

इतिहास इस तथ्य से भी भली प्रकार साक्षी है कि कुछ भेंटों में ही डा. अम्बेडकर और महात्मा गांधी में 'पूना पैक्ट' नाम से प्रसिद्ध वह समझौता हो गया था, जिसमें डा. अम्बेडकर ने पृथक निर्वाचन के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन पद्धति की बात मान ली थी और महात्मा गांधी ने भी दलितों के लिए उनकी संख्या के अनरूप प्रादेशिक तथा केन्द्रीय विधान सभाओं में सुरक्षित स्थानों के प्रावधान को स्वीकार था। पूना पैक्ट पर निम्न वर्गों की ओर से डा. अम्बेडकर और सवर्ण हिन्दुओं की ओर से पं. मदन मोहन मालवीय ने हस्ताक्षर किए और निर्णय हुआ कि प्रांतीय विधान सभाओं में 148 स्थान एवं केन्द्रीय विधान सभा में 10 प्रतिशत निम्न जाति के प्रतिनिधि आरक्षित रखे जाएं। जिस सौहार्दपूर्ण वातावरण में महात्मा गांधी और डा. अम्बेडकर की यह बातचीत हुई वह ऐतिहासिक घटना बनकर रह गई।

दोनों नेताओं के आदान–प्रदान की इस उदारता के कारण देश पर आया हुआ यह संकट टल गया। जहां राष्ट्रपिता महात्मा गांधी अपनी प्रतिज्ञा के बन्धन से मुक्त हुए, वहीं दलितों के मुक्तिदाता डा. अम्बेडकर को अपनी लक्ष्य सिद्धि प्राप्त करने का अवसर की ओर से लोगों को उदासीन करना श्रमिकों को अपने पैरों पर खड़ा होने का आह्वान मात्र ही था। क्योंकि आज जहां चरखा देश से गायब हो गया है, वहीं भारी भरकम मशीनों ने देश की छाती को मथकर रख दिया है। श्रमिक आन्दोलन के प्रति तो डा. अम्बेडकर का दृष्टिकोण कुछ और ही था। 17 दिसम्बर, 1948 को दिल्ली में ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कैम्प में मजदूरों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि–''सर्वप्रथम मजदूरों को यह बात त्याग देनी चाहिए कि भारत में उनका अंतिम लक्ष्य ट्रेड यूनियन स्थापित करना ही है, इससे ज्यादा नहीं। मजदूरों को यह घोषणा करनी चाहिए कि उनका लक्ष्य सरकार सम्भालना है। इसके लिए उन्हें राजनीतिक दल के तौर पर लेबर पार्टी संगठित करनी चाहिए। यह दल ट्रेड यूनियन की गतिविधियां भी करेगा। किन्तुं इसे ट्रेड यूनियनवाद की संकीर्ण और संकुचित दृष्टि से मुक्त होना चाहिए। साथ ही इसे साम्प्रदायिक और पूंजीवाद राजनैतिक दलों से दूर रहना चाहिए। मजदूरों को योग्य बनाकर निश्चित रूप से सिद्ध करना चाहिए कि ये दूसरों से बेहतर सरकार चला सकते हैं।''

जो 24-25 लाख रुपया खर्च किया, मैं समझता हूं, वह निरर्थक गया। उतने धन से तो मैं अछूतों में एक अपूर्व परिवर्तन ला देता। हम महात्माओं में आस्था नहीं रखते। हमारी समस्या के प्रति तो आज तक सवर्णों/सवर्ण हिन्दुओं का कोई हृदय परिवर्तन नहीं हुआ।'' डा. अम्बेडकर ने आगे कहा कि जिस देश में हमें पशुओं से भी बदतर समझा जाता है, उस देश को मैं अपना देश कैसे कहूं? मुझे इस बात का निरन्तर ध्यान रहता है कि मेरे किसी भी कार्य से देश के हित को हानि न पहुंचे, लेकिन अछूतों के मौलिक अधिकारों के लिए लड़ना, संघर्ष करना, देशद्रोह तो नहीं समझा जाना चाहिए।

महात्मा गांधी ने पहली गोलमेज कांफ्रेंस में डा. भीमराव अम्बेडकर के योगदान की सराहना की और कहा कि मैं तो आपको एक महान् देशभक्त मानता हूं। लेकिन हिंदुओं और हरिजनों में राजनीतिक पृथकता का मैं विरोधी हूं।

महात्मा गांधी के प्रति डा. अम्बेडकर का यह विश्वास और अनास्था एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य था। दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस के लिए दोनों नेता लन्दन जाने वाले थे, दोनों के लक्ष्यों में विरोध नहीं था, लेकिन उस लक्ष्य की प्राप्ति के साधनों में अवश्य ही दूसरे अल्पमत वर्गों (सिक्ख, मुस्लिम, एंग्लो इंडियन ईसाई आदि) की तरह दलितों को भी पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया जाये। अनन्तर दलितों के लिए सुरक्षित स्थानों पर संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था कर दी जाए तथा अछूतों को दलित या हरिजन कहने की बजाए उप जाति हिन्दू या प्रोटेस्टेंट हिन्दू कहा जाए।

महात्मा गांधी ने अल्पमत समिति की इन सिफारिशों का कड़ा विरोध किया, लेकिन ब्रिटिश सरकार भारतीय विभिन्न वर्णों की इन परस्पर विरोधी मांगों में अपने उपनिवेशवादी–प्रशासन के लिए 'सुरक्षा' देखती थी। इसलिए अल्पमत–समिति ने देश के लिए कई निर्वाचन प्रणाली का प्रावधान रखने की सिफारिश कर दी। इस घोषणा ने देश के राजनीतिक वातावरण में अशांति और तनाव पैदा कर दिया। कांग्रेस के नेता इसे साम्राज्यवादी शासन की जन–विभाजन कूटनीति मानते थे।

महात्मा गांधी ने उद्घोषणा की कि वह इस पृथक निर्वाचन प्रणाली को कभी स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि यह देश के संगठन को छिन्न–भिन्न कर देने की एक साम्राज्यवादी चाल है। मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूंगा। केन्द्रीय विधान सभा में 'दलितों के प्रतिनिधि' डा. बी.एस. मूंजे तथा एम.सी.राजा ने दलितों को 'डबल वोट' देने का अधिकार मिला अर्थात् अपने प्रतिनिधियों को चुनने के लिए मत देना तथा अन्य प्रतिनिधियों के चुनाव में भी वोट देना। यह डा. अम्बेडकर की बहुत बड़ी जीत थी। इस 'एवार्ड' में मुसलमानों, सिक्खों, ईसाईयों आदि को भी पृथक चुनाव का अधिकार मिला था।

महात्मा गांधी और कांग्रेस के नेता इस 'एवार्ड' को देश के लिए शरारतपूर्ण और घातक समझते थे। इसलिए उन्होंने इसे वापिस लेने के लिए सरकार पर दबाव डालने के लिए देशव्यापी आन्दोलन चलाने का निश्चय किया। लेकिन सरकार ने पहले ही महात्मा गांधी को कैद करके पूना की यर्वदा जेल में बन्द कर दिया। वहां महात्मा ने पृथक निर्वाचन सम्बन्धी 'एवार्ड' को निरस्त करवाने के लिए 20 सितम्बर, 1932 के दिन आमरण अनशन प्रारम्भ करने की घोषणा कर दी। इससे सारा देश एक संकट की स्थिति में आ गया। देशवासी जानते थे कि महात्मा (गांधी) अपने निश्चय से टस से मस न होंगे। अतः देश के सभी प्रमुख नेता चिन्तित हो उठे। 20 सितम्बर से महात्मा गाँधी ने अपना आमरण अनशन शुरू कर दिया। 21 सितमब्र को देश के कई प्रमुख नेता जेल में गांधी जी को देखने गए, डा. अम्बेडकर भी उनमें से एक थे।

महात्मा गांधी ने जहां–जहां भी शोषित एवं पीड़ित लोगों के संदर्भ में दक्षिणी अफ्रीका की स्थिति का जिक्र किया है, तभी–तभी डा. अम्बेडकर ने महात्मा गांधी की बातों पर टिप्पणी में कहा है कि–''हम दक्षिणी अफ्रीका की बात करते हैं, यह आश्चर्य का विषय है, कि हम जो किसी को अलग रखे जाने के विरुद्ध इतनी तीव्रता से आवाज उठाते रहे हैं, क्या हम नहीं जानते कि हमारे प्रत्येक गांव में दक्षिण अफ्रीका है, हमें केवल उधर जाना और देखना है कि गांव में सब जगह दक्षिण अफ्रीका है।''

महात्मा गांधी ने सदैव ही अहिंसा की लड़ाई लड़ी है तथा भारी बलिदान देकर विजय प्राप्त भी की है। इस पर भी डा. अम्बेडकर अपने उद्गारों में स्पष्ट करते थे–''मैं स्वयं अहिंसा में विश्वास रखता हूं, किन्तु मैं अहिंसा और कायरता में भेद करता हूं। कायरता ऐसी कमजोरी है, जिसे व्यक्ति स्वेच्छा से अपने ऊपर लादता है, यह उसका गुण नहीं है।''

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने चरखा चलाकर, अपने हाथों से खद्दर बुनकर स्वदेशी का आन्दोलन चलाया था। हमारे विचारों से बापू का मुख्य उद्देश्य विदेशी माल का बहिष्कार तथा भारी भरकम कलपूर्जों वाले बड़े–बड़े मिलों

उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त भी डा. अम्बेडकर और महात्मा गांधी में वैचारिक विरोध स्पष्ट दिखाई देते हैं। अनेक विषयों को लेकर यदि हम तनिक विचार करें तो, इनकी झलक स्पष्ट दिखाई दे जाती है। महात्मा गांधी ने 'हरिजन' नामक पत्र प्रकाशित कर जहां उछूतोद्धार के सतत प्रयास किये हैं; वहीं डा. अम्बेडकर ने 'मूकनायक' नामक पाक्षिक पत्र निकालना आरम्भ किया और सबको समान आदर एवं अछूतों को शिक्षा आदि की सुविधाऐ दिए जाने के बारे में प्रखर लेख लिखे हैं।

महात्मा गांधी ने जहां 'रामधुन' पर हरिजनों, दलितों, पिछड़ों को 'पतित पावन सीता राम' नाम पर जागने का आहवान् किया है, तो वहीं दूसरी ओर लोगों को सम्बोधित कर कहा है कि –''यदि तुम लोग स्वयं अपनी दासता को पूर्णतः समाप्त करने की प्रतिज्ञा पर डटे रहते हो, उसके लिए कष्ट और कठिनाईयां सहने को तैयार हो तो अपने इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने तथा संघर्ष के द्वारा ही आप शक्ति और प्रतिष्ठता प्राप्त कर पाओगे।

डा. अम्बेडकर ने जून 1945 में 'कांग्रेस व महात्मा गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया?' नामक पुस्तक की

(शेष भाग.... पृष्ठ 4 पर)

धर्मान्तरण–एक अत्यन्त गंभीर समस्या

लेखक : एच.वाई. शारदा प्रसाद, पूर्व सूचना सलाहकार, भारत सरकार। अनुवादक–विद्यावारिधि आचार्य गुरुप्रसाद

धर्मान्तरण एक अत्यन्त गंभीर समस्या है। सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) के अलम्बरदारों की मांग है कि ईसाई धर्म में दीक्षित करने का अभियान बन्द होना चाहिए। एकड़ें क्षेत्रफल के कागजों के फैलाव पर यह खबरें छपती रही हैं कि ईसाइयों के पूजास्थलों पर हमले किये गये। गुजरात में तथा अन्य स्थानों में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिये विभिन्न राजनैतिक दलों तथा सामाजिक संगठनों ने उनकी रक्षा की मांग की। प्रधानमंत्री ने इस विषय पर जनता से इस अहम मुद्दे पर बहस का आह्वान किया है।

एक स्तंभ लेखक ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि धर्मान्तरण हमारे इतिहास की पहली घटना नहीं है। उसने धर्मान्तरण पर ध्यानाकर्षण कराया कि जब राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने ''बुद्धों का मत अपनाया, जब इस्लाम भारत में आया, जब गोवा के कैाोलिक ईसाई धर्म और कलकत्ता में प्रोटेस्टेन्ट ईसाई धर्म की स्थापना पर, धर्मान्तरण पर चिन्ता व्यक्त की गई।

यह कहना कितना विचित्र लगता है कि सिद्धार्थ गौतम ने बुद्ध मत को अपनाया या वे बुद्ध बने। बात कुछ अन्तर्विरोधी तर्कों पर आधारित है क्योंकि बुद्ध से पहले इस प्रकार का बुद्ध मत नहीं था। उसने उसे अपनाया ही नहीं बहुसंख्यक रहे होंगे। यह बात भी विचारणीय है। सनातन धर्म या हिन्दू धर्म का कभी नामकरण किया गया हो किन्तु इसमें भी संदेह नहीं है कि कट्टर सनातन धर्मी कभी इस ओर चिंतित हुए हों।

कई शताब्दियों तक तो वैदिक धर्म के अलम्बरदारों और भिक्षुओं और श्रमणों में शास्त्रार्थ होता रहा जो केवल बहस तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि आपस में छुट–पुट लड़ाइयां और खून खराब भी हुआ। हमारे पास इस बात के पक्के प्रमाण हैं कि दक्षिण के शैव सम्प्रदाय के लोगों ने जैनियों की हत्यायें की। कभी–कभी जैन मतावलम्बियों और वैष्णव धर्मावलम्बियों में हिंसायें भड़की हैं, किन्तु ये हिंसायें इस लम्बे चौड़े देश की भारी जनसंख्या के अनुपात में बहुत ही कम रही हैं। किन्तु आमतौर पर देखा गया है कि आम लोगों में धर्माचार की आजादी रही है। धर्माचार की आजादी का सदैव एक ही मतलब रहा है कि लोगों को अपना धर्म प्रचारित करने की पूरी आजादी हो। सदियों तक तो बुद्ध धर्म के प्रचारकों की बाढ़ सी आई रही है जो धर्म प्रचार के लिये समुद्रपार पूरब में तथा हिमालय को लांघ कर उत्तर के मध्य एशिया तक करने की आजादी रही है। यही कारण है कि रामनुजाचार्य ने बहुत से जैन तथा बसवेश्वर मतावलम्बियों के सभी जाति के लोगों, मंदिरों के पुजारियों को जिनमें कुछ तो सफाईकर्मी थे, वीर शैव सम्प्रदाय में धर्मान्तरित किया था। दुख की बात यह है कि जो काम जातिवाद को समाप्त करने के लिये किया गया था वह समय के थपेड़े खाते–खाते स्वयं एक जाति के रूप में विकसित हो गया। यही दशा वीर शैव सम्प्रदाय की हुई, यही कबीरपंथियों के साथ हुई।

फिर भी 'जीओ और जीने दो' का सिद्धान्त बना रहा और इसी विचार के तहत ईस्वी सन की शुरुआत में पहले पहल ईसाइयों का आगमन भारत के केरल प्रदेश में हुआ। फिर यहूदी ईसाई पुर्तगालियों के साथ आये। अकबर तथा उसके अन्य मुगल अमीर उभराओं ने दार्शनिक विचार विनमय के लिये उन्हें निमंत्रित किया। भारत के प्राचीन ईसाई पादरी, ब्राह्मणों को भी पादरी बनाने में नहीं हिचकते थे जैसा कि 'अखै डुबाइज' ने श्रीरंगपट्टन में किया।

निस्संदेह अंग्रेजी हुकूमत में शासकों ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ हो, कारण कि उनके धर्मान्तरण का आधार आर्थिक नहीं रहा है बल्कि धर्मान्तरण का मूल कारण जो सहज और सुस्पष्ट है वह है मात्र आत्मसम्मान। हिन्दू धर्म त्यागने से यह कभी नहीं हुआ कि वे भारतीयता से ओत–प्रोत न रहे हों। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में बहुत से ईसाइयों का राष्ट्रीय स्तर पर योगदान रहा है।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने धर्मान्तरण के औचित्य पर एक राष्ट्रीय बहस का आह्वान किया था। यह बहस तो कभी की हो चुकी है। यह उस समय हुई थी जब भारतीय संविधान का निर्माण हो रहा था। बहुत सारे प्रमुख ईसाइयों ने हमारे संविधान निर्माण में योगदान दिया है जिसमें एक हैं एच.सी. मुखर्जी जो संविधान सभा के उपाध्यक्ष थे। दूसरे एम. रत्नास्वामी, तीसरी राजकुमारी अमृत कौर, चौथे यहूदी पादरी जेराम डिसूजा और पांचवें तथा छठे थे जाओचिन अल्वा और बायलेट अल्वा। हम यहां दूसरे अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों का सूचीबद्ध नहीं कर रहे।

उस समय धर्म स्वातंत्र्य पर बहुत हिन्दू कार्यकर्ताओं को अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों की भावना का आदर करते हुए उन्हें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की भांति सम्मान देना चाहिये, उनके लिये स्कूल कॉलेज, अस्पताल खोलने चाहिये। जैसे कि दूसरे मिशनरी करते हैं। कुष्ठ रोगियों की सेवा करनी चाहिये, उपेक्षित लोगों के लिये संस्थान बनाने चाहिये तभी वे लोग हिन्दू धर्म और हिन्दू देवी देवताओं में आस्था प्रकट करेंगे और दूसरे धर्म में अपने देवी देवता तलाश नहीं करेंगे।

स्वामी विवेकानंद के वैदिक विचारों के महात्म्य में अमेरिका में दिये गये भाषणों का स्मरण कर हिन्दुओं के हृदय फूले नहीं समाते। हमें प्रसन्नता होती है जब हम रामकृष्ण मिशन द्वारा पश्चिमी जगत में शाखायें खुलती देखते हैं। हम पाश्चात्य युवाओं का हरे कृष्ण आन्दोलन में स्वागत करते हैं। विदेशों में अनेकों हिन्दू धर्म प्रचारकों की प्रतिमाओं को और उनके संगठनात्मक कार्यों को सराहा जाता है। अपने देश में हम अपने हिन्दू

था अपितु उसका प्रर्वतन–संस्थापन भी किया था। यदि उन्हें बुद्ध परम्परा का तथागत भी मान लिया जाये तो भी इसका अर्थ तर्कसंगत ही है कि एक धर्म से दूसरे धर्म में दीक्षित होना प्राचीन काल से ही सिद्ध हो जायेगा।

पूर्व वैदिक काल में भी धर्म का प्रचार–प्रसार पुरोहितों द्वारा किया गया था जिनका भरपूर वृतान्त पुराणों में संकलित है। यद्यपि यह वास्तविक इतिहास नहीं है अपितु इसमें भारत के मूल निवासियों आदिवासियों का वैदिक धर्म में दीक्षित होने के प्रमाण अवश्य मिल जाते हैं।

बुद्ध ने एक नये पंथ की स्थापना कर उसका प्रचार किया था। वैदिक धर्म के बाद बुद्ध धर्म ही पहला धर्म नहीं है यहां जैन धर्म भी स्थापित हुआ है। कुछ धर्म में जन समावेश अधिक था चूंकि वह सहज स्नेह पर आधारित था। वह स्थापित धर्माचरण और वर्णव्यवस्था के प्रतिकूल था। इन सबसे अधिक वह अपनी प्रजातान्त्रिक पद्धति से आम जनता को अधिक आकर्षित करता था। इसके अतिरिक्त उसे सम्राट अशोक से लेकर अनेक राज्य परिवारों का संरक्षण मिला हुआ था।

जैन धर्म का भी इसी प्रकार प्रचार हुआ था। हमें कोई ऐसा मापदण्ड नहीं मिला जबकि हम कह सकें कि बुद्ध धर्मावलम्बी या जैन धर्म के लोग कभी जनसंख्या के अनुपात में कहीं गये और बुद्ध धर्म का प्रचार किया।

समुद्रपार करके अथवा हिमालय को लांघ कर तो हिन्दू धर्म भी बाहर गया। यही कारण है कि दक्षिण एशिया में कई हिन्दूराज्य हैं और वहां जो हिन्दू मंदिर बनवाये गये वे आज भी अवस्थित हैं। कोरिया की कहानियों में उनके लोकप्रिय राजा का अयोध्या की राजकुमारी से विवाह का वृतान्त है।

आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने बौद्ध तथा ब्राह्मण आस्थाओं पर आधारित वेदान्त दर्शन दिया और वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना में अपना योगदान दिया। बहुत से रुढ़िवादी पंडित तो उन्हें 'प्रछन्न बौद्ध' का नाम देते हैं और बुद्ध के रूप में ही धर्मप्रचारक मानते हैं।

अन्ततोगत्वा हिन्दू धर्म ने ही बुद्ध धर्म को आत्मसात कर लिया और बुद्ध धर्म लोप सा हो गया। बुद्ध का धर्मान्तरण करके उसे वैष्णव का अवतार मान लिया गया। विरोधी भावनाओं का परित्याग कर ईश्वर विरोधी जैन धर्म को भी हिन्दू धर्म लील गया।

इन सब ऐतिहासिक तथ्यों में यह बात विचारणीय है कि आम जनता को अपनी रुचि का धर्म चुनने की आजादी रही है और उसके प्रचार करने की छूट रही है। उसके प्रचारक केवल प्रचार ही नहीं करते बल्कि दूसरे को अपने विचारों से प्रभावित करके अपने धर्म (पंथ) में दीक्षित करके धर्मान्तरित ईसाई मिशनरियों को उनके धार्मिक कार्यकलापों के लिये प्रोत्साहित किया यद्यपि बाद में उन पर पर्दा डालने की कोशिश की। भारत में यदि मिशनरियों के कार्यों का आकलन किया जाये तो हम पायेंगे कि उन्होंने शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। असमानता की व्यवस्था के कारण जातिवाद और अस्पृश्यता के शिकार लोगों के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत से भावुक हिंदुओं की आंखें खोलने वाला है जिसका अनुसरण कर उन्होंने बहुत से सुधारवादी आन्दोलन चलाये। जो लोग मिशनरी स्कूलों में कालेजों में पढ़ते हैं उनके लिये यह जरूरी नहीं है कि वे ईसाई ही बनें (प्रमाण के तौर पर हिन्दुत्व के अलम्बरदार डा. कर्ण सिंह को ही लीजिये। वे दिल्ली के सेन्ट स्टीफन्स कॉलेज में पढ़े हैं) हालांकि कुछ लोग धर्मान्तरित भी हुआ है जैसे केशवचन्द्र सैन और पंडित रमाबाई।

इनमें कोई आश्चर्य नहीं है कि धर्मान्तरित लोगों में बहुत बड़ी संख्या दलित तथा आदिवासी हिन्दुओं की है। यही सत्य उन लोगों के लिये भी है जिन्होंने पूर्व सदियों में बुद्ध धर्म अपनाया था। जिन्होंने मध्यकाल तथा हमारे समय में इस्लाम धर्म अपनाया और अभी कुछ काल पहले बहुत से अम्बेडकर अनुयायी जिन्होंने बुद्ध धर्म अपनाया। इस क्रम में भले ही उनके सी गहन और सारगर्भित बहसें हुई थीं। हम लोगों ने विभाजन की विभीषिका झेली है। धर्म के नाम पर बहुत सा रक्तपात भी हुआ है किन्तु देश के कर्णधारों ने अपनी दूर दृष्टि से भारत केवल हिन्दू राष्ट्र न मानकर एक धार्मिक सहिष्णुता का राष्ट्र मानने तथा बनाने का साहस दिखाया है जिसके कारण ही संविधान की धारा 25 से 29 तक में धार्मिक आजादी के अधिकार को समाहर्त कर उसे मौलिक अधिकारों में सुनिश्चित किया है।

संविधान विशेषज्ञ सोली सोरावजी ने हिन्दुत्व से गहन दिलचस्पी रखने वाले के.एम. मुन्सी के वचन पर ध्यानाकर्षण किया है जिन्होंने संविधान सभा में कहा था कि भारतीय ईसाइयों ने अपने सही धर्म का पालन करते हुए हमारे लिये बहुत कुछ थाली संजोकर रख दी है क्योंकि वे धर्म प्रचार को अपना मौलिक कर्तव्य मानते हैं। इसी संदर्भ में संविधान सभा के एक अन्य सदस्य श्री कृष्णा स्वामी भारती ने घोषणा की थी कि उनके अपने अनुभव के आधार पर ईसाइयों ने अपने धर्म के प्रचार में धर्म के सही दृष्टिकोण की मानवीय सीमाओं को कभी नहीं लांघा है। दूसरे धर्मावलम्बियों को उनका अनुसरण करते हुए मानवीय कार्य करने चाहिये। विदेशी मिशनरियों और उनके विदेशी धनदान से धर्मान्तरण का विरोध करने की बजाय भजनों प्रवचनों को नित्य लाउडस्पीकरों पर सुनते सुनाते हैं किन्तु हम ईसाई मिशनरियों का यह कार्य नहीं करने देना चाहते, यह कैसा न्याय है?

हम यदि धर्मान्तरण पर कोई प्रतिबन्ध कोई सीमा निर्धारण या संविधान में कोई परिवर्तन करने की सोचेंगे तो हमें ध्यान रखना होगा इस सोच का भयंकर गलत संदेश देश के मुसलमानों, ईसाइयों, नवबौद्धों को जायेगा। यह एक बहुत ही गलत बात होगी। काली टोपी वालों ने इफ्तार की पार्टियों, बिशपों के स्नेह मिलन और नागपुर के चीवर चढ़ाने से नहीं मिट पायेगी।

इस समय इस बहस की ना तो आवश्यकता है ना ही समय है बल्कि संविधान की प्रस्तावना में वर्णित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिये तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है।

हिन्दू धर्माचार्यों का यह विचार स्वागत योग्य है। अयोध्या (वार्ता) देश में हो रहे धर्मान्तरण पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए धर्माचार्यों ने उसके लिये किसी हद तक समाज की संकीर्ण भावना को जिम्मेदार ठहराया है।

(शेष भाग.... पृष्ठ 4 पर)

हिमायती
4 / मई (द्वितीय), 2019 (कुल पृष्ठ 4)
पोस्टल डिस्पेच तिथि : 16-17 मई, 2019

आर. एन. आई. नं. 40611/62
रजि. G-3/DL(N)/090/2018-2020
प्रकाशन तिथि : 12 मई, 2019

संपादकीय का शेष....जाति के दंश से कब छुटकारा मिलेगा दलितों को

अंकित है। इससे समझा जा सकता है कि गत पांच हजार सालों से अछूतों (शूद्रों–दलितों) के साथ अमानवीय व्यवहार होता आ रहा है और कुकृत्यों को धर्म नाम पर मनुस्मृति की वैधता के साथ जोड़कर उचित बताया है।

उच्च वर्णीय ब्राह्मणों की तेज दृष्टि दलित महिलाओं पर भी रहती थी। किसी भी सुन्दर दलित युवती को देखकर वे उसके परिवार पर दबाव बनाते थे कि वे अपनी उस युवती को मन्दिर के भगवान को भेंट कर दें जिससे देवदासी के रूप में वह मंदिर की आजीवन सेवा करती रहे। अगर कोई दलित परिवार इसके लिए तैयार नहीं होता था तो उस दलित युवती को जबरन उठाकर मन्दिर की देवदासी बना दिया जाता था जहां भगवान की सेवा के नाम पर मन्दिर के पण्डे–पुजारी उसका पूरे जीवन उपभोग करते थे।

ऐसी ही एक प्रथा गांव के दबंग जमींदारों, सेठ–साहूकारों में प्रचलित थी, जहां गांव के किसी दलित युवा की शादी होने पर उसकी दुल्हन की डोली उसके घर में न जाकर उन दबंग जमींदारों व सेठ–साहूकारों की हवेली में शुद्धिकरण के नाम पर जबरन ले जायी जाती थी, जहां दलित दुल्हन के साथ वे सुहागरात मनाते थे। फिर उसके बाद उस दलित दुल्हन को उसके पति को सौंप दिया जाता था। हिन्दू धर्म की ऐसी दूषित प्रथाओं से दलितों की मान–मर्यादा के साथ खिलवाड़, हजारों साल तक चलता रहा है।

देश में आजादी के बाद राज–रजवाड़े खत्म हो गये। भारतीय संविधान ने देश के प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता, समानता, बन्धुता, न्याय का बराबर का अधिकार दिया। महारानी व मेहततनी, राजा रंक, पंडित जी व अछूत सबको एक वोट का बराबर का अधिकार दिया। छुआछूत, भेदभाव को दण्डनीय अपराध बनाया गया। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अपराध निरोधक कानून–1989 बनाकर दलितों पर अत्याचार रोकने के कदम उठाये गये। उन्हें निर्वाचन, सरकारी नौकरियों व शिक्षण संस्था में उनकी आबादी के अनुपात में आरक्षण कोटा देकर सत्ता, शासन, प्रशासन में बराबरी की भागीदारी देकर समाज में उन्हें बराबरी के पायदान पर लाने का सपना संजोया गया। पर, इसके बावजूद हम देखते हैं कि समाज में जाति भेदभाव का दंश अभी मिटा नहीं है। लोगों में ऊंच–नीच की भावना अभी खत्म नहीं हुई है। लोगों के दिलों में अभी भी जात–पांत, छुआछूत, की गन्दगी बरकरार है जिसके कारण उच्च जाति के लोगों की ओर से हर रोज दलितों पर कहर ढाया जाता है, प्रताड़ना और अपमान किया जाता है।

पिछले कुछ वर्षों में बगाना (झज्जर हरियाणा) और ऊना (गुजरात) में दलित युवकों पर ऊंची जाति के गोरक्षकों द्वारा की गई प्रताड़ना, मारपीट, हत्या की घटनायें सुर्खियों में रही है जहां दलित युवकों पर आरोप था कि वे गोकसी कर रहे थे, जबकि सच्चाई यह थी कि वे मरी गायों की खाल उतार रहे थे। हरियाणा के गुहाना व मिर्चपुर की घटनायें भी पिछले साल सुर्खियों में रहीं जब दलितों व उनके घरों को ऊंची जाति के लोगों ने जलाकर राख कर दिया था। पीड़ित दलित न्याय की आस आज भी लगाये बैठे हैं।

समाज में जातिगत भेदभाव का जहर अभी तक किस कदर ऊंची जाति के लोगों में भरा है, यह पिछले सप्ताह उत्तराखंड के टिहरी जिले के नैनबाग तहसील में दलित युवक जितेन्द्र दास के साथ घटी घटना से समझा जा सकता है जहां एक शादी के समारोह में आमंत्रित लोग खाना खा रहे थे, वहीं यह दलित युवक भी खाना लेकर कुर्सी पर बैठकर खाने लगा। उच्च जाति के लोगों को उनके बराबर कुर्सी पर बैठकर खाना खाना अपना अपमान लगा। एक दलित की उसके बराबर कुर्सी पर बैठकर खाना खाने की हिम्मत कैसे हुई? इसी बात पर गुस्से में भरकर उन सबों ने दलित युवक जितेन्द्र दास के साथ मारपीट शुरू की और जब तक वह उसकी मार से मर नहीं गया, उसे मारते रहे।

दलितों को अपनी छोटी जाति का होने का यह दंश हर रोज सहना पड़ता है। शहरों की चकाचौंध में भले ही जातिभेद दिखाई नहीं देता हो, पर देश के 6 लाख गांवों में वर्ण व्यवस्था व जातिवाद के दड़बे आज भी कायम हैं। लोग पढ़–लिखकर भी अपनी ऊंची जाति के दंभ को छोड़ने को आज भी तैयार नहीं हैं। दलितों के खिलाफ जातिगत हिंसा का सच बेहद तकलीफदेह और शर्मनाक है।

हमारे देश में विकास की चकाचौंध में सारा जोर भौतिक निर्माण पर रहा है। सामाजिक विकास नीतियों पर गौर करने की जरूरत कभी नहीं समझी गई। जब तक जाति व्यवस्था और इससे संचालित सामाजिक मनोविज्ञान को केन्द्र में रखकर इससे छुटकारे का रास्ता नहीं निकाला जायेगा, तब तक समाज में जाति आधारित हिंसा की बीमारी की जड़ों का कमजोर करना संभव नहीं। इसलिए दलितों को जाति आधारित हिंसा से छुटकारा दिलाने के लिए भारतीय संविधान द्वारा उन्हें मिले मौलिक अधिकारों पर पूरी तरह अमल करना होगा, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अपराध निरोधक कानून को सख्ती से लागू करना होगा, साथ ही दलितों को मिले आरक्षण कोटा को ईमानदारी से लागू करना होगा, तभी दलित सबल, समर्थ, आत्मनिर्भर बनेंगे और इस जाति के दंश से छुटकारा पाने में सक्षम होंगे।

– डॉ. सुमनाक्षर

पृष्ठ 3 का शेष...धर्मान्तरण–एक अत्यन्त गंभीर समस्या

धर्मान्तरण को देश की एकता अखंडता के लिये भी यह धर्माचार्य घातक मानते हैं लेकिन उड़ीसा में आस्ट्रेलिया मूल के ईसाई मिशनरी तथा उसके परिवार के साथ हुई घटना को वे किसी प्रकार उचित नहीं मानते। उनका कहना है कि धर्मान्तरण को रोकने के लिये अपने में परिवर्तन लाना होगा और छुआछूत, गरीबी, अशिक्षा जैसी बुनियादी सामाजिक कुरीतियों को जड़ से मिटाना होगा। गोरक्षा पीठाधीश्वर एवं राम जन्मभूमि आन्दोलन में अग्रणी रहे महन्त अवैद्यनाथ का इस सम्बन्ध में स्पष्ट कहना है कि धर्मान्तरण को रोकने के लिये हिन्दू समाज में छुआछूत जैसी संकीर्ण भावना को हर हाल में दूर करना होगा।

महन्त अवैद्यनाथ ने कहा कि तमाम उपेक्षाओं के बावजूद हिन्दू समाज का वह तबका आज भी धर्मान्तरण की नहीं सोच रहा है जिसे हमने अपना रखा है। धर्मान्तरण के लिये वही बाधा है जिनकी उपेक्षा के साथ किन्हीं कारणों से हम उन्हें अपना नहीं पा रहे हैं। वे हमसे दूर होते चले जा रहे हैं और इसी का लाभ उठाकर मिशनरियां उनका धर्मान्तरण कराने में सफल हो जाते हैं। उनका कहना था कि हर हाल में गरीबी और अशिक्षा को मिटाते हुए हमें सामाजिक समरसता पैदा करनी होगी जिससे सरकारों की बजाय मठ मंदिरों, धर्माचार्यों तथा समाज के अग्रणी लोगों को सार्थक पहल करनी होगी।

रामजन्म भूमि के एक अन्य प्रमुख सन्त एवं सांसद स्वामी चिन्मयानन्द ने कहा कि यदि हमें धर्मान्तरण की समस्या से निपटना है तो उसके लिये वैभवशाली मठ मंदिरों को अपने स्तर पर रचनात्मक भूमिका अदा करनी होगी। उनका कहना था कि मठ मंदिरों को बड़े–बड़े भंडारों की बजाय गरीबों की रोजी रोटी की दिशा में काम करना चाहिये।

इस बीच अयोध्या के महन्त नृत्यगोपाल दास ने ईसाई समुदाय से अपील की कि वे सेवा शिक्षा के नाम पर धर्मान्तरण कराकर धार्मिक स्थानों की पवित्रता कलंकित ना करें। अयोध्या में राम जन्म भूमि से जुड़े महन्त गोपाल दास ने पत्रकारों से वार्ता में कहा कि धार्मिक सहिष्णुता भारत की विशेषता है। मंदिर मस्जिद गुरुदारों या अन्य धार्मिक स्थानों में तोड़–फोड़, हिंसा अथवा हत्या की निन्दा की जानी चाहिये। •

पृष्ठ 2 का शेष.....अम्बेडकर और गाँधी में वैचारिक अन्तर्विरोध

रचना कर, गांधी जी और कांग्रेस की नीतियों की आलोचना की। उन्होंने 1948 में 'अछूत लोग' (The Untouchables) तथा 1951 में 'जाति विच्छेद' नामक पुस्तकें भी दलितोद्धार हेतु लिखी।

अंतिम विषय वैसे तो बड़ा बचकाना सा लगता है, परन्तु है बड़ा गम्भीर। महात्मा गांधी सदैव ही नारी जाति से तो उदासीन रहे अथवा सारी उम्र उस पर प्रयोग ही करते रहे। कच्ची उम्र में ही 'बा' (कस्तूरबा गांधी) से विवाह हो जाने पर कुछेक बच्चे पैदा कर लिए, फिर उनको अपना मित्र बनाकर अन्त में 'बा' (मां) ही कहने लगे। अंतिम दिनों में तो चलने–फिरने, उठने–बैठने के लिए युवा लड़कियों का सहारा ही राष्ट्रपिता के पास रह गया था। यदि महात्मा जी की आत्मकथा को सांगोपांग पढ़ा जाए तो बापू इससे भी आगे की बात कह गये हैं।

कहने का अभिप्रायः है कि बापू ने केवल नारी का सुखद 'पल्लु' (आंचल) ही देखा है। शायद उनके पास उसकी पीड़ा जानने का समय ही नहीं था, या वह उस ओर से अनदेखी कर गए। किन्तु विडम्बना ही है कि इस देश में युगों–युगों से नारी पर अत्याचार भी बराबर ही होते आए हैं। उसका कुछ शोषण तो जाति–पाति से उपजी घृणा के कारण हुआ और कुछ आर्थिक रुप में स्वतंत्र हो रहे लोगों को न सह पाने के कारण। पूर्व काल में तो समग्र स्त्री जाति ही शिक्षा से वंचित थी। पुरातन युग में पुत्र को प्राप्त करने के लिए स्त्रियों को घोर अपमान से गुजरना पड़ता था, परन्तु फिर भी कई बार तो वे अपने पुत्र पर भी अपना अधिकार नहीं रख पाती थी। समाज ने उसे पति के पराधीन बना दिया। उसे तलाक तक का अधिकार भी प्राप्त नहीं था। हिन्दू समाज में लड़की को अपनी इच्छानुसार विवाह का अधिकार नहीं था। विधवा हो जाने की स्थिति में उसे पति के संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में से कोई हिस्सा नहीं मिलता था।

कानूनी संरक्षण प्रदान करने के लिए बाबा साहब ने बम्बई विधान परिषद् में महिलाओं को प्रसव–अवकाश देने सम्बन्धी बिल का जोरदार शब्दो में समर्थन किया। नारी की दशा को बदलने के लिए, उनके मन में बहुत दृढ़ता थी। उन दिनों उनकी शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं थी। फिर भी भारतीय नारी के कल्याण की तीव्र भावना से 'हिन्दू कोड बिल' का मसौदा तैयार करने में दिन–रात एक करते रहे। उनके अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप तैयार किया हुआ, 'हिन्दू कोड बिल' 5 फरवरी, 1951 को संसद में पेश हुआ। इस बिल में उत्तराधिकार, गुजारा, भरण–पोषण, विवाह, तलाक, गोद लेना आदि मुद्दों पर हिन्दुत्व की एकता तथा प्रगतिशीलता की दष्टि से विचार किया गया।

स्त्री–मजदूरों को वेतन के साथ प्रसूति छुट्टियों की सुविधा भी डा. अम्बेडकर के कठिन संघर्ष की ही देन है। ''भारतीय नारी का उत्थान एवं पतन'' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक निस्संदेह बाबा साहब द्वारा रचित भारतीय नारी की मार्ग दर्शक है। आज भारतीय नारी को जो अधिकार प्राप्त हैं और यदि वह जीवन के हर क्षेत्र में मानवीय अधिकारों का आनन्द अनुभव कर रही है तो यह सब बाबा साहब डा. अम्बेडकर के महाप्रयासों का फल है। •

स्वामी, सम्पादक/ प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर द्वारा वन्दना आफसेट प्रिन्टर्स, A-9 सराय पीपलथला एक्सटेंशन, दिल्ली-33 में मुद्रित तथा रजि. कार्यालय : 233 टैगोर पार्क, माडल टाउन, दिल्ली-9 से प्रकाशित। ❑ सह सम्पादक - श्रीमती त्रिलोचन सुमनाक्षर ❑ व्यवस्थापक : जय सुमनाक्षर, फोन : 27421449, मो. 9810278936 **Email-sumanakshar@ymail.com**

नोट : हिमायती में प्रकाशित रचनाओं के लिए सम्पादक की सहमति जरूरी नहीं। हिमायती से सम्बन्धित किसी भी कानूनी कार्रवाई का क्षेत्र दिल्ली न्यायालय तक ही सीमित है।

सम्पादकीय कार्यालय : बी 3/9, दूसरी मंजिल, माडल टाउन-1, दिल्ली-110009